भीष्म साहनी की कहानियों में साम्प्रदायिक चेतना

डॉ. राम प्रवेश रजक
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

शोध सारांश :
हिन्दी साहित्य में विभाजन की विभीषिका पर लिखने वाले साहित्यकारों में भीष्म साहनी का नाम भी अग्रणी लेखकों में आता है। भीष्म साहनी का रचना संसार अविभाजित भारत, विभाजन की त्रासदी, विस्थापन दंगे और पुनर्स्थापना के साथ-साथ उसके लम्बे मोहभंग और उसकी दुःस्वप्न की कहानी है।

बीज शब्द :
साम्प्रदायिकता विरोधी मनोवृत्ति, उदारतावाद का पाखंड, साम्प्रदायिक कट्टरवाद, विभाजन की त्रासदी, विस्थापन दंगे और पुनर्स्थापना, धार्मिक उन्माद।

प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य को जिन कथाकारों ने प्रभावित किया है। उनमें भीष्म साहनी का महत्वपूर्ण स्थान है। लगभग साठ वर्ष की दीर्घावधि में उनकी कहानियाँ लिखी गयी हैं। 1934 ई0 में उन्होंने पहली कहानी लिखी थी। वो कॉलेज पत्रिका ''राखी'' में प्रकाशित हुई थी। अमृतराय की संपादन में हंस पत्रिका में उनकी पहली कहानी ''नीली आँखें'' छपी थी। ''नीली आँखें'' से लेकर नीले (वागर्थ अंक 68, फरवरी 2001 ई0) तक भीष्म जी की कथा लेखन में कोई ठहराव नहीं है। भीष्म साहनी का यह अनवरत् कथा लेखन उनकी रचनात्मक सोद्देश्यता से जुड़ा है। उनका कहानी लेखन जीवन से गहरे अर्थों में जुड़ा है। 'भाग्य रेखा' (1953 ई0), 'पहला पाठ' (1947 ई0), 'भटकती राख' (1966 ई0), 'पटारियाँ' (1923 ई0), 'शोभा यात्रा (1981 ई0), 'निशाचर (1983 ई0), 'पाली' (1989 ई0) और 'डायन' (1998 ई0) उनकी नौ कहानी संकलन हैं जिनमें कुल कहानियों की संख्या 120 है। सवा सौ की लगभग अपनी कहानियों में भीष्म साहनी ने भारतीय यथार्थ की विविध पक्षों को प्रस्तुत किया है। सन् 1947 ई0 में देश विभाजन की त्रासदी को भीष्म भुगत चुके थे। उनका परिवार रावलपिण्डी से विस्थापित होकर भारत आया था। इसलिए उनकी साहित्य में मानवता की पीड़ा, मूल्य एवं नैतिकता, सांप्रदायिकता और विस्थापन की पीड़ा, धार्मिक उन्माद और रोंदे गए मानवीय संबंधों की चीख सुनायी देती है। परन्तु, उन्होंने अपनी रचनाओं में एक जैसी घटना से रसहीनता या मोहभंग की स्थिति से स्वयं को बचाकर रखा और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा में यकीन करते रहे। जीवन मूल्यों को बचा लेने की संकल्प को दोहराते रहे, अपनी रचनात्मक विषय वस्तु से भीष्म साहनी ने हिंदी गद्य की परंपरावादी सोच को हिलकार रख दिया और हिन्दी कथा-लेखन की क्षेत्र में एक अलग पंक्ति में खड़े हो गए।

हिन्दी साहित्य में विभाजन की विभीषिका पर लिखने वाले साहित्यकारों में भीष्म साहनी का नाम भी अग्रणी लेखकों में आता है। इनकी कहानी 'अमृतसर आ गया है' इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भीष्म साहनी ने विभाजन की त्रासदी को एक रेलयात्रा की माध्यम से कहानी में व्यक्त किया है। रेल की डिब्बे में मुसलमान भी हैं और हिन्दू यात्री भी हैं। ये सहयात्री होते हुए संयोग से समान नियति की भागीदारी भी हैं। भीष्म साहनी ने इस बात को स्पष्ट तौर पर उभारा है कि इस तरह की घटनाओं की दुष्परिणाम मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों के लिए समान रूप से घातक हैं। रेलयात्रा में दो हृदय विदारक घटनाएँ घटित होती हैं जो इस विडम्बना को रेखांकित करती है। यह यात्रा पाकिस्तान से हिन्दुस्तान की ओर से जा रही रेलगाड़ी से हो रही हैं।

कहानीकार ने अनिश्चय की इस वातावरण का सजीव चित्रांकन किया है। कहानीकार प्रारंभ में यह संकेत दे देता है - ''कोई नहीं जानता था कि कौन-सा कदम ठीक रहेगा और कौन-सा गलत। एक ओर पाकिस्तान बन जाने का जोश था तो दूसरी ओर हिन्दुस्तान की आजाद होने का जोश। जगह-जगह दंगे हो रहे थे और ..... इसी अनिश्चिय की स्थिति में किसी-किसी वक्त भावी रिश्तों की

डिब्बे में बैठे मुसलमान पठान लेखक की बगल में बैठे पतले से दिखने वाले बाबू (हिन्दू) का मजाक बनाते हैं - ''ओ खंजीर की तुख्म, इधर तुम्हें कौन देखता है ए? हम तेरी बीवी को नई बोलेगा। ओ तू अमारे साथ बोटी तोड़।....ओ कितना बुरा बात ए, अम खाता ए और तू अमारा मुँह देखता ए।''[2] बाबू द्वारा माँस का टुकड़ा अस्वीकार करने पर वे पठान बाबू को और अधिक चिढ़ाते हैं - ''मांस नहीं खाता ए बाबू त¨ जाओ जनाना डब्बे में बैठो, इधर क्या करता ए?''[3]

दुबले बाबू को इन पठानों का व्यवहार बहुत खराब लगता है लेकिन भीतर-भीतर वह उस अग्नि में जलता रहता है। भीष्म साहनी ने इस कहानी में डिब्बे की भीतर और रेलगाड़ी के बाहर की परिवेश की भयावहता को सम्पूर्णता में उबारा है - ''एक आदमी साथ वाले डिब्बे में से पानी लेने उतरा और नल पर जाकर पानी ल¨टे में भर रहा था। वह भागकर अपने डिब्बे की ओर लौट आया। छलछलाते ल¨टे में से पानी गिर रहा था। लेकिन जिस ढंग से वह भागा था उसी ने बहुत कुछ बता दिया। नल पर खड़े और ल¨ग भी, तीन या चार आदमी रहे होंगे...इधर-उधर अपने-अपने डिब्बे की ओर भाग गए थे। इस तरह घबराकर भागते लोगों को मैं देख चुका था। देखते-ही देखते प्लेटफार्म खाली हो गया।''[4]

भीष्म साहनी ने इस परिवेश को पूरी यथार्थता से व्यक्त किया है - ''भागते व्यक्ति, खटाक से बंद होते दरवाजे, घरों की छतों पर खड़े लोग, चुप्पी और सन्नाटा, सभी दंगों के चिन्ह थे।''[5]

गाड़ी की डिब्बे में प्रवेश करने के लिए एक हिन्दू यात्री उसकी पत्नी और एक लड़की घुसने का प्रयास करते हैं। लेकिन पठान लोग उन्हें अन्दर घुसने से मना करते हैं। ये यात्री डिब्बे में घुस नहीं पाते और पठान उस हिन्दू यात्री की पत्नी को पैर मारता है। पठानों द्वारा हिन्दू यात्री के साथ यह दुर्व्यवहार दुबले बाबू के हृदय में काँटे की तरह चुभता रहता है। इस व्यवहार को देखकर डिब्बे में बैठी बुढ़िया बोलती है - ''बहुत बुरा किया है तुम लोगों ने बहुत बुरा किया है। बुढ़िया ऊँचा-ऊँचा बोल रही थी। 'तुम्हारे दिल में दर्द मर गया है। छोटी-सी-बच्ची उनके साथ थी, बेरहमों, तुमने बहुत बुरा किया है। धक्का देकर उतार दिया है।' गाड़ी सूने प्लेटफार्म को लाँघती आगे बढ़ गई। डिब्बे में व्याकुल-सी चुप्पी छा गई। बुढ़िया ने बोलना बंद कर दिया था। पठानों का विरोध कर पाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई।''[6]

दुबला बाबू अन्दर से भयभीत तो था, साथ ही बाहर की वातावरण से और अधिक भयाक्रान्त हो जाता है - ''आग है देखो, आग लगी है।''[7]

इस बाहर की घटना का प्रभाव डिब्बे की अंदर भी पड़ रहा था - ''अपनी-अपनी जगह बैठे सभी मुसाफिरों ने अपने आस-पास बैठे लोगों का जायजा ले लिया है। सरदार जी उठकर मेरी सीट पर आ बैठे। नीचे वाली सीट पर बैठा पठान अपने दो साथी पठानों के साथ ऊपर वाली बर्थ पर चढ़ गया।''[8]

रेलगाड़ी चलती जा रही थी और इस भयावह वातावरण को और अधिक तीव्र से तीव्रतर करती जा रही थी - ''अगले स्टेशन पर जब गाड़ी रूकी तो वहाँ भी सन्नाटा था। कोई परिंदा तक नहीं फड़क रहा था। हां, एक बिश्ती पीठ पर पानी की मशक लादे प्लेटफार्म लाँघकर आया और मुसाफिरों को पानी पिलाने लगा। 'लो, पियो पानी, पानी पियो', औरतों की डिब्बे में से औरतों और बच्चों के अनेक हाथ बाहर निकल आए थे। बहुत मार-काट हुई है, बहुत लोग मरे हैं। लगता था, वह इस मार-काट में अकीला पुण्य कमाने चला आया है।''[9]

परिवेश की भयावहता खिड़की से बाहर रात्रि को और अधिक घनीभूत कर देती है - ''दुनिया और भी अनिश्चित और भी अधिक रहस्यमयी हो उठी। किसी-किसी वक्त दूर किसी ओर आग की शोले उठते नजर आते, कोई नगर जल रहा था।''[10]

दुबला-पतला बाबू अमृतसर स्टेशन आने पर निडर हो उठता है और पठान से कहता है - ''नीचे उतर, तेरी मैं.....हिंदू औरत को लात मारता है। हरामजादे, तेरी उस.....''[11]

यह दुबला बाबू जो अब तक चुप बैठा था अत्यन्त क्रुद्ध हो जाता है - ''अपने घर में शेर बनता था तेरी मैं उस पठान बनाने वाले की....''[12]

ये पठान स्टेशन आने पर दूसरे डिब्बे में चले जाते हैं। लेकिन दुबले बाबू का गुस्सा पठानों के न होने पर एक अन्य मुस्लिम यात्री पर फूट पड़ता है जो डिब्बे में प्रवेश के लिए खटखटाते हैं। यह दुबला बाबू कहीं से एक लोहे की छड़ ले आता है और मुस्लिम यात्री के चेहरे पर जोर से वार करता है - ''तभी सहसा उसकी चेहरे पर लहू की दो-तीन धारें एक साथ फूट पड़ीं..... वह कटे हुए पेड़ की भाँति नीचे जा गिरा। और उसकी गिरते ही औरत ने भागना बंद कर दिया, मानो उन दोनों का सफर एक साथ खत्म हो गया।''[13]

दुबले बाबू के इस अमानवीय व्यवहार पर सरदार जी शाबासी देते हैं कि बड़े जीवट वाले हो बाबू। दुबले-पतले हो, पर बड़े गुर्देवाले हो। बड़ी हिम्मत दिखाई है। इस प्रकार कहानीकार ने रूढ़िवादी और मूल्यहीन विश्वासों और अमानवीय आचरण के द्वारा हिन्दू-मूस्लिम दंगों की एक वास्तविक गाथा को सरलता के साथ कलात्मक रूप में यहाँ चित्रित किया है। साम्प्रदायिकता, धर्मांधता, जातिवादिता और रूढ़िगत विश्वासों पर उन्होंने तीव्र प्रहार किए हैं।

भीष्म साहनी की कहानी 'पहला पाठ' में एक तरफ उदारतावाद का पाखंड है और दूसरी ओर कट्टरवाद। ये कहानी मंडाफोड़ टोली में इस बात को जाहिर करती है कि वाणप्रस्थी जी अछूतों को अपना सकते हैं, लेकिन मुसलमानों को नहीं। इस कहानी का मकसद यह है कि सिर्फ सवर्णों और अछूतों की बीच ही नहीं, बल्कि हिन्दुओं और मुसलमानों की बीच भी तअस्सुब नहीं होना चाहिए। ये मकसद इतना लुभावना है कि हम उसके चकाचौंध में इस पर भी गौर नहीं करते कि वो माहौल और अमल की नतीजे की तौर पर पैदा न होकर ऊपर से आकर जुड़ गया है।

सुल्तान अहमद लिखते हैं - ''भीष्म साहनी की साम्प्रदायिकता विरोधी मनोवृत्ति का परिचय हमें 'पहला पाठ' कहानी से ही चल जाता है, जिसमें ब्रह्मचारी देवव्रत की शिक्षा-दीक्षा पुस्तकों द्वारा कम और चाँटों द्वारा अधिक हुई थी। सबसे पहली शिक्षा उसे हिन्दुत्व प्रेम की मिली, जब वह आठ-नौ वर्ष का था। एक बार आचार्य बाणप्रस्थी जी अछूतोद्धार पर

करूणाजनक व्याख्यान देते हैं जिससे प्रभावित होकर देवव्रत एक मैली बनियान वाले लड़की को यह कहकर गले लगा लेता है, 'तू मेरा भाई है, तू अछूत नजर आता है? यह तो मुसलमान है।' एक तरफ उदारतावाद का पाखण्ड है और दूसरी ओर कटरवाद - आदमी के बीच दीवार खड़ी करने की मनोवृत्ति।''[14]

भीष्म साहनी की 'सरदारनी' कहानी एक सच्ची घटना पर आधारित है। कहानीकार ने साम्प्रदायिक विद्वेश का चित्रण करते हुए कहानी को साम्प्रदायिक सद्भाव में बदल दिया है। कहानी एक अफवाह से आरम्भ होती है। मास्टर करमदीन स्कूल बन्द कर घर आ जाते हैं। अफवाह है कि हिन्दू-मुसलमान परस्पर मार-काट करने की तैयारी कर रहे हैं। मास्टर करमदीन मुसलमान मुहल्ले में जाना चाहते हैं। सरदारनी जो पड़ोस में रहती है, उसे यह नागवार लगता है। वह कहती है - मास्टर यहीं पड़े रहो। तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सका। यह उनके रक्षा का वचन देती है। दंगा शुरू हो जाता है। मास्टर का नाम भी दंगाई नोट करते हैं, पर सरदानी अपनी जान पर खेलकर उन्हें मुसलमान मुहल्ले में पहुँचाती है। इस प्रकार अपने प्राण संकट में डालकर वह अपने वचन का पालन करती है। इस कहानी द्वारा कहानीकार दो उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, एक तो यह बताना कि दंगों का कोई कारण नहीं होता। अफवाहों पर ध्यान नहीं देनी चाहिए। दूसरा उद्देश्य है सरदानी के उदात्त चरित्र द्वारा साम्प्रदायिक सद्भाव का वातावरण उत्पन्न करना। जाति-धर्म सम्प्रदाय के संकुचित धारणा त्यागकर मानव सेवा की धर्म का निर्वाह करना।

भीष्म साहनी की अंतिम कहानी 'मैं भी दिया जलाऊँगा, माँ' में गहरे मानवीय बोध से अनुप्रेरित साम्प्रदायिक तांडव की बीच घिरे एक मुस्लिम बच्चे की मन को अत्यंत करूणा और भाव-प्रवणता की साथ उकेरा गया है। यह कहानी पाँच-छः साल की बच्चे को लेकर है और उन दिनों की है जब गुजरात में नर-संहार चल रहा था। भीष्म साहनी कहते हैं - ''उस रात जब नन्हें शाहिद की मृत्यु हुई, वह सपना देख रहा था। देख ही नहीं रहा था। उसकी आँखों के सामने मानों उसका सपना साकार हो रहा था। वह स्वयं अपने सपने को चरितार्थ होते देख रहा था और उसमें स्वयं भाग ले पाने की लिए बेचैन हो रहा था। ..... यों, पिछली शाम से ही नन्हें शाहिद का सपना साकार आकार ग्रहण करने लगा था, जब अपनी माँ का हाथ पकड़े वह अपनी कोठरी के बाहर खड़ा था और उसकी माँ, कोठरी के बाहर, बस्ती के बड़े आँगन में शहर से आने वाली किसी बीवी के साथ बतिया रही थी। .....वह औरत कौन थी, शाहिद नहीं जानता था। उसने उसे पहले कभी नहीं देखा था। पर वह औरत उसकी माँ जैसी नहीं थी।

शहरवालों बीवी टकटकी बाँध, शाहिद की माँ के चेहरे की ओर देखे जा रही थी, ''मैंने तो सुना है कि जो कोई फद शाह आलम की दरगाह पर दिया जलाता, वह साथ ही साथ नरसी भगत की नाम पर भी दिया जलाता है। क्या यह सच है?'' ''हाँ, बहन जी यह चलन है।..... ऐसा क्यों?'' .....दोनों पहुँचे हुए खुदा की बंदे थे। दोनों पहुँचे हुए पीर-फकीर थे।.....शाहिद सुन रहा था। तभी उसके हाथ में कँपकपी सी हुई मानों उसका हाथ दिया जलाने के लिए मचल उठा हो। शाहिद मचल कर बोला, माँ अब की बार मैं भी दिया जलाऊँगा। कुल की खैर, कुल का भला।'' ''अल्लाह रहम करे, तुम भी दिया जलाना बेटा'' और कहते हुए माँ की आवाज काँप गई थी। पर रात के ही किसी पहर में, बाहर की ओर से तरह-तरह की आवाजें आने लगी थीं। बाहर की आवाजें ऊँची उठने लगी थीं। शाहिद की नींद टूटी जब नानी-माँ की मुँह से निकला, हत्या अल्लाह खैर।'' तभी वहाँ खटका हुआ था। तभी वह घटना भी घटी थी जो सच्चाई और सपने की बीच झूल रही थी। तभी नन्हें शाहिद को लगने लगा था, जैसे उर्स आ गया है और सभी लोग दिये जलाने की तैयारी में लग गए हैं। ..... और वह अधखुले दरवाजे में से बाहर निकल गया था। पर उसी वक्त बाहर से आने वाली आवाजें ऊँची उठने लगी भी, और टूटी-फूटी कोठरियों की इस बस्ती की ओर ललकारती हुई बढ़ती आ रहीं थीं, जबकि नन्हा शाहिद उर्स में दिया जलाने जा रहा था।''[15]

इस कहानी का अंत अपनी मार्मिकता में गहरे अवसाद में नहीं ले जाता बल्कि हमें तीखे सवालों से रू-ब-रू कराता है जो आज और विकराल बनकर हमारी चेतना को बुरी तरह से झकझोर रहे हैं। क्या नन्हें शाहिद की शहादत साम्प्रदायिक सौहार्द्र और मानवीय संवेदना से भरी हमारी उस हजारों साल पुरानी सांस्कृतिक परम्परा की मौत है जो आज भी हमारे सामाजिक, पारिवारिक और शैक्षिक संस्कारों में कहीं रची-बसी तो है लेकिन लगातार उसमें कमी आ रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कहानीकार भीष्म साहनी ने अपने समय की क्रूरतम साम्प्रदायिक घटनाओं को बड़े ही शुद्ध मन से प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

1. साहनी, भीष्म - पटरिया (कहानी संग्रह), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1973 ई0, पृ0 संख्या-150
2. वही - पृ0 सं0-150
3. वही - पृ0 सं0-151
4. वही - पृ0 सं0-151
5. वही - पृ0 सं0-151
6. वही - पृ0 सं0-153
7. वही - पृ0 सं0-153
8. वही - पृ0 सं0-153
9. वही - पृ0 सं0-154
10. वही - पृ0 सं0-155
11. वही - पृ0 सं0-156
12. वही - पृ0 सं0-156
13. वही - पृ0 सं0-158
14. कदम, अभिनव - पत्रिका, सं0 - जयप्रकाश धूमकेतु, अंक-2-3, नवम्बर-1999- अक्तूबर-2000, पृ0-80-81
15. साहनी, भीष्म - मैं भी दिया जलाऊँगा, माँ' कहानी, पृ0-80-81